ग़ैर-अहमदी आपत्तियों का

महा विद्वान अल्लामा नियाज़ फ़तेहपूरी

द्वारा उत्तर

مخالفین احمدیت کے اعتراضات

اور

علامہ نیاز فتحپوری کا جواب

प्रस्तुतकर्ता व अनुवादक

अल्-हाज डॉ॰ख़ुर्शीद आलम तारीन

2009 AD

अहमदिय्या अंजुमन इशात-ए-इस्लाम हिन्द

शाखा कलमदान पुरा, श्रीनगर, कश्मीर

पिन. १९००२

Scanned with CamSca

ग़ैर–अहमदी आपत्तियों
का
महा विद्वान अल्लामा नियाज़ फ़तेहपूरी
द्वारा उत्तर

प्रथम उर्दू संस्करण : 1995 AD
प्रथम हिन्दी संस्करण : 2009 AD

© 2009, Ahmadiyya Anjuman Isha'at Islam Lahore Inc.,U.S.A.
P.O. Box 3370, Dublin, Ohio 43016, U.S.A.
Internet : www.muslim.org
E-mail : aaiil@aol.com
All Rights Reserved throughout the world.
The Copyright of this hindi booklet, in printed, electronic and all other forms, is strictly enforced by the Publisher.

भारत में मिलने का पता :

A.A.I.I.L
THE MOSQUE, QALAMDAN PORA,
SRINAGAR, KASHMIR
A.A.I.I.L
L-25A, DILSHAD GARDEN,
DELHI- 110095
A.A.I.I.L
THE MOSQUE,
PEER MITHA JAMMU TAWI
PIN. 17000

Scanned with CamSca

अल्लाह––अपार दयालु, सतत् कृपालु के नाम से।

ग़ैर–अहमदी आपत्तियों का महा विद्वान अल्लामा नियाज़ फ़तेहपूरी द्वारा उत्तर

مخالفین احمدیت کے اعتراضات اور علامہ نیاز فتحپوری کا جواب

दो शब्द अनुवादक की ओर से

मौलाना नियाज़ फ़तेहपूरी भारत–पाक उपमहाद्वीप के उच्चकोटि के आलोचक, विद्वान एवं धर्मज्ञाता थे। सुविख्यात मासिक उर्दू पत्रिका *"निगार"* लखनऊ के संपादक भी थे। अहमदिय्या जमात से उनका कोई संबंध न था। इस विश्वव्यापी जमात की शिक्षाओं, मान्यताओं और प्रचार–उपलब्धियों का अध्ययन करने की उनको कब और कैसे प्रेरणा मिली, इस को स्वयं उन्हीं के शब्दों में पढ़िये :

"अहमदी जमात के हालात पर चिन्तनमनन की प्रेरणा मेरे भीतर सब से पहले उस समय जागी जब कुछ वर्ष पहले पाकिस्तान की मुस्लिम बहुसंख्या ने अहमदी जमात को काफ़िर क़रार दे कर उन के खिलाफ़ मार–काट का एक ज़बरदस्त अभियान चलाया। इस संबंध में मुझ को सब से ज़्यादा तकलीफ़ इस बात से हुई कि अगर अहमदी जमात को काफ़र मान भी लिया जाये तब भी उन की मार–काट कहाँ का इस्लाम और कैसी वीरता थी? इस के बाद मैं ने यह जानना चाहा कि आख़िर पाकिसतानी *अहरार* पारटी के ग़ाज़ी (सूरमा) अहमदियों को क्यों काफ़िर

Scanned with CamSca

कहते हैं। खोजबीन और अध्ययन से पता चला कि उनका सब से बड़ा इल्ज़ाम अहमदियों पर यह है कि वे हज़रत पैग़म्बरश्री मुहम्मद (उन पर अल्लाह की अपार शांति और दयालुता वर्षित हो!) को *ख़ातिमुर्रुसुल* (आख़िरी रसूल) नहीं मानते। यह जान कर मैं घोर विस्मय में पड़ गया, क्योंकि अगर यह सच भी हो तब भी किसी को क्या अधिकार है कि इस अपराध के लिए उन्हें फ़ाँसी पर चढ़ाए। जबकि स्वयं पाकिसतान के लाखों ग़ैर–मुस्लिम निवासी अल्लाह के रसूल[सल्ल]को पैग़म्बर ही तसलीम नहीं करते, *ख़ातिमुर्रुसुल* (आख़िरी रसूल) मानना तो दूर रहा। उन को मृत्युदंड के योग्य क्यों नहीं समझा जाता? इस सिलसिले में मुझे अहमदी जमाअत का लिट्रेचर देखने का शौक़ पैदा हुआ। मैं ने जब इस जमाअत के संस्थापक मिर्ज़ा गुलाम अहमद साहिब द्वारा लिखित किताबों का अध्ययन शुरू किया तो मैं और ज़्यादा हैरान हो गया। क्योंकि मुझे उन का कोई भी लेख ऐसा न मिला जिस से इस आरोप की तसदीक (पुष्टि) हो सकती। बल्कि इस के विपरीत मैं ने उनको *ख़तमे रिसालत* (पैग़म्बरी के अन्त) में विश्वास रखने वाला तथा सही मायनों में हज़रत पैग़म्बरश्री मुहम्मद[सल्ल]का अगाध–प्रेमी पाया। इस के साथ मैं ने मिर्ज़ा साहिब की जीवनी का अध्ययन किया, तो मालूम हुआ कि वे यक़ीनन अति निष्कपट, सच्चे धर्मपरायण, दृढ़–संकल्पक और महा साहसी इन्सान थे। उन्हों ने धर्म की सही आत्मा को समझकर इस्लाम की वही अमली (व्यवहारात्मक) शिक्षा प्रस्तुत की जो हज़रत पैग़म्बश्री[सल्ल]और उनके सच्चे ख़लीफ़ों (उत्तराधिकारियों) के ज़माना में पाई जाती थी। मैं ने उन के विरोधियों की किताबें भी पढ़ीं, जिन में मिर्ज़ा साहिब को काफ़िर, लानती, मक्कार और ग़द्दार कहा गया है। लेकिन मैं ने इन किताबों में बिल्कुल कोई गरिमा न पाई.....धर्म के मामले में मेरा मत और विचार यह है कि जो व्यक्ति अपने आप को मुसलमान कहता है वह यक़ीनन मुसलमान है, किसी को यह हक़ नहीं पहुंचता कि वह उसे ग़ैर–मुस्लिम या काफ़िर कहे।

Scanned with CamSca

क्योंकि हर मुसलमान, चाहे वह किसी भी जमात से संबंध रखता हो, कम से कम अल्लाह की *वहदानियत* (एकत्व) और अल्लाह के रसूल की *रिसालत* (अल्लाह की ओर से नियुक्ति) में ज़रूर विश्वास रखता है। और इसी मान्यता का नाम इस्लाम है। रही बात *फ़रोई* (गौन या उपप्रधान) मान्यताओं और अंगों की तो उन में मतभेद करना काई ऐसा अपराध नहीं कि जिस के आधार पर किसी जमात को इस्लाम के दायरे से बाहर कर दिया जाए।

"जहाँ तक मेरी अपनी व्यक्तिगत मान्यताओं का संबंध है तो मुझे शीआ, सुन्नी, ख़ारिजी, अहमदी, अहले कुर्आन, अहले हदीस, *मुक़ल्लदीन* (किसी ईमाम विशेष का अनुसरण करने वाले) व *ग़ैरमुकल्लदीन*—सब के साथ मतभेद है। हाँ! किसी से कम, किसी से ज़्यादा। लेकिन मैं इन सब को मुसलमान और अखिल मुस्लिम–समुदाय का सदस्य मानता हूँ। हाँ! इस से हट कर जब सवाल तरजीह और वरीयता का आता है तो मैं बेशक यह कहने पर मजबूर हो जाता हूँ कि इस वकत अहमदियों से ज्यादा कार्यशील एवं सुसंघटित जमात और कोई नहीं। और जब तक इन की यह सुव्यवस्थित संघटन क़ायम है मैं इन्हें सब से उत्तम मुसलमान कहता रहूँगा। भले ही अपनी अयोग्यता, कम हिम्मती, उदासीनता या अपनी व्यक्तिगत ग़लत अक़्लपसन्दी के कारण कभी इन में शामिल न हो सकूँ.....मैं यह नहीं कहता कि अहमदी जमात फ़रिशतों की जमात है, और वे कभी किसी गुनाह के भागी नहीं हुए। लेकिन मैं यह ज़रूर जानता हूँ कि अगर दूसरी जमातों में फ़ी हज़ार एक सच्चा मुसलमान मिलेगा, तो इन मैं 50 प्रतिशत ऐसे व्यक्ति मिलें गे जो सच मुच अपनी मानवता और उच्च नैतिकता के कारण सही मुसलमान कहे जा सकते हैं। फिर जब मैं देखतो हूँ कि यह लगन और सुसंघटन नतीजा है सिर्फ़ मिर्ज़ा साहिब के उच्च व्यक्तित्व का तो वे मुझे प्रतिज्ञात **(promised)** *महदी* से भी ज्यादा ऊँचे नज़र आते हैं।

Scanned with CamSca

क्योंकि अव्वल तो *महदी* के आगमन की मान्यता ही सर्वथा बेमानी बात है। लेकिन यदि वे कभी तशरीफ़ भी लाये तो शायद उस से ज़्यादा कुछ न कर सकेंगे जो मिर्ज़ा साहिब ने कर दिखाया।''

(मासिक *निगार,* नवम्बर 1961 ई॰ बहवाला
ملاحظات نیازفتحپوري''मुलाहिज़ाते
नियाज़ फ़तेहपुरी'', पृष्ठ 107–109)

ज्यों ही मान्यवर अल्लामा नियाज़ फ़तेहपूरी का यह बेलाग अध्ययन और शोध पत्रिका द्वारा प्रकाशित हुआ तो विरोधी पक्ष ने सवालों और आपत्तियों का एक लंबा सिलसिला शुरू कर दिया, जिसका उत्तर वे बड़ी शिष्टता और ठण्डे दिमाग़ से देते रहे। सवाल–जवाब का सिलसिला उन की पत्रिका *'निगार'* में अगसत 1959 ई॰ से अकतूबर 1962 ई॰ तक जारी रहा। उस के पश्चात् उनका देहांत हो गया और यह सिलसिला बन्द हो गया। जमाते अहमदिय्या कराची (पाकिस्तान) के श्री मुहम्मद अजमल साहिब शाहिद एम॰ए॰ ने अल्लामा नियाज़ फ़तेहपूरी साहिब के इन अनुसन्धानमूलक लेखों को एक किताब ملاحظات نیازفتحپوري *''मुलाहिज़ाते नियाज़ फ़तेहपुरी''* के नाम से संग्रहित कर दिया है। हमारी इस पुस्तिका में वही संग्रह हमारे सामने है। चूंकि आपत्तिकर्ताओं की भाषा में गाली–गलोच और अभद्रता का अंश कुछ अधिक ही था, इस लिए प्रश्न को हम ने अपने शब्दों में बयान किया है। लेकिन उत्तर का एक एक शब्द मान्यवर अल्लामा नियाज़ फ़तेहपूरी साहिब के क़लम से ही है।

(डॉ॰) खुर्शीद आलम तारीन

Scanned with CamSca

ग़ैर–अहमदी आपत्तियों का महा विद्वान अल्लामा नियाज़ फ़तेहपूरी द्वारा उत्तर

مخالفین احمدیت کے اعتراضات اور علامہ نیاز فتحپوری کا جواب

सवाल : अहमदिय्या समुदाय के संस्थापक बड़े शातिर थे। केवल सांसारिक सुखभोगों के लिए उन्हों ने इस्लामी रिवायतों और मान्यताओं का ग़लत लाभ उठाया। विभिन्न प्रकार के दावे कर सीधे सादे मुसलमानों को अपने मायाजाल में फाँसा।

मान्यवर नियाज़ फ़तेहपूरी साहिब का जवाब : "मैं ने जब आँख खोली, मुसलमानों को आपस में गुत्थम–गुत्था होते ही देखा। सुन्नी, शीआ, अहले कुर्आन, अहले हदीस, देवबन्दी, ग़ैर–देवबन्दी, वहाबी बिदअती और ख़ुदा जाने कितने टुकड़े मुसलमानों के हो गए थे। इन में का प्रत्येक गुट्ट दूसरे गुट्ट को काफ़िर कहता था। एक भी मुसलान ऐसा न था जिस के मुसलमान होने पर सभी गुट्ट सहमत होते। एक ओर तो मुस्लिम समाज में मतभेद और अन्तरविरोध का यह हाल था तो दूसरी ओर आर्यसमाजी उपदेशक और ईसाई प्रचारक इस्लामी साहित्य और मुस्लिम महापुरुषों की मानमर्यादा पर हमले कर रहे थे––कि––उसी ज़माना में मिर्ज़ा गुलाम अहमद साहिब सामने आये। उन्हों ने समस्त मतभेदों से ऊपर उठ कर दुनिया के सामने इस्लाम की वही वास्तविक छवी प्रस्तुत की जिस को लोगों ने भुला दिया था या ग़लत समझा था। यहाँ न अबू बकर व अली का झगड़ा था, न *रफ़अ यद्दैन* (नमाज़ में अहले हदीस की तरह हाथ ऊपर उठाना) और *आमीन बिल्–जहर* (नमाज़ में अहले हदीस की तरह आमीन शब्द का उचारण ज़ोर से करना) का मतभेद था, न *अमल बिल्–कुर्आन* (कुर्आन पर

Scanned with CamSca

अमल) की बहस थी, न हदीस बयान करने वालों की प्रमाणिकता का झगड़ा। सिर्फ़ एक ही धारणा सामने थी, और वह यह कि इस्लाम नाम है हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल]के पावन आदर्श के विधिवत अनुसरण का, और उस व्यवहारिकता का, त्याग की उस सच्ची भावना का, उस प्रेम और सौहार्द का, उस हमदरदी और भाईचारे का और उस क्रियाशीलता का जो हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल]के व्यक्तित्व की परम विशेषता और इस्लाम धर्म की एकमात्र नींव और बुनियाद थी।

मिर्ज़ा गुलाम अहमद साहिब ने इस्लाम की प्रतिरक्षा की, और उस वकत की जब कोई बडे से बड़ा मुस्लिम विद्ववान भी दुश्मनों के मुक़ाबले में आने का साहस न रखता था। मिर्ज़ा साहिब ने सोए हुए मुसलमानों को जगाया, उठाया और चलाया, यहाँ तक कि वे चल पड़े, और ऐसा चल पड़े कि आज भूमंडल को कोई भाग ऐसा नहीं जो उन के पदचिन्हों से खाली हो, और जहाँ वे इस्लाम की सही शिक्षा न पेश कर रहे हों .....रही यह बात कि मिर्ज़ा साहिब ने स्वयं अपने आप को क्या ज़ाहिर किया। तो इस का कुछ भी महत्त्व नहीं। क्योंकि असल सवाल यह नहीं कि उन्हों ने अपने आप को क्या कहा। और यह स्वयं में इतनी बड़ी उपलब्धि है कि इस के उपलक्ष्य में (रिवायतों और परिभाषाओं को उपेक्षाकृत करते हुए) मिर्ज़ा साहिब को हक़ पहुंचता था कि वे अपने आप को *महदी* (शब्दशः, *जिसको दिव्य मार्गदर्शन या हिदायत प्राप्त हो*) कहें क्योंकि उन्हें हिदायत प्राप्त थी, या स्वयं को *मसीहा* का प्रतिरूप कहें, क्योंकि वे रूहानी रोगों के चिकित्सक थे, और *नबी का ज़िल* (प्रतिबिंब) कहें, क्योकि वे अल्लाह के रसूल के पदचिन्हों का अनुसरण करते थे।'' (मासिक निगार, अक्तूबर 1960 ई॰ बहवाला ''मुलाहिज़ाते नियाज़ फ़तेहपुरी'', पृष्ठ 60–61)

''आओ इस मसले पर एक और अन्दाज़ से चिन्तनमनन करें.....अगर आप का यह इलज़ाम सही मान लिया जाए कि मिर्ज़ा साहिब के *महदी* होने का दावा सरासर कपट और धोखा था, तो मानना पड़े गा कि यह बहुत बड़ा षड्यंत्र था। और जो व्यक्ति अपने मिशन की नींव ही ऐसे झूठ औ कपट पर रखे गा, वह यक़ीनन बडे घटिया चरित्र का मालिक होगा, और उसके जीवन का लक्ष्य इसके अतिरिक्त और कुछ न होगा कि वह लोगों को धोखा दे कर दुनिया कमाये, और ऐश व आराम की ज़िन्दगी बसर करे। हालांकि मिर्ज़ा

Scanned with CamSca

साहिब की ज़िन्दगी की एक भी घटना ऐसी पेश नहीं की जा सकती, जिस से किसी सुदूर विकल्प द्वारा भी यह साबित हो सके कि वे खुदग़र्ज, मतलब परस्त, और लोभी इन्सान थे। उन्हों ने जिस समय अहमदिय्यत का प्रचार शुरू किया, उसी समय साफ़ साफ़ कह दिया कि उनका मात्र उद्देश्य इस आंदोलन द्वारा इस्लाम की अमली शिक्षाओं को पुनः जीवित करना है। और इस पावन उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे रातदिन जुटे रहे। आपको संभवतः इस बात से इनकार न होगा कि इस आंदोलन को चलाने के लिए उन्हें किन किन कठिनाइयों का मुक़ाबला करना पड़ा, कैसे कैसे कंटीले रास्तों से गुज़रना पड़ा। पर उन्हों न कभी हिम्मत न हारी, और अन्ततः उन की निष्कपटता और सत्यता की जीत हुई।''

(मासिक निगार, अप्रैल 1961 ई॰ बहवाला
''मुलाहिज़ाते नियाज़ फ़तेहपुरी'' पृष्ठ 76–77)

सवाल : मिर्ज़ा साहिब *ख़तमे नबूवत* के इनकारी, और इस्लाम की बुनियादी मान्यताओं के विपरीत स्वयं नबी होने के दावेदार थे, ऐसी सूरत में उनका खण्डन और *तकफ़ीर* (काफ़िर घोषित करना) अनिवार्य हो जाता है। मुस्लिम जगत के *उलेमा* (विद्वान) यही कर्तव्य निभा रहे हैं।

जवाब : ''जब मैं ने खुद इस जमात के लिट्रेचर और इसके अमली पहलू का अध्ययन किया तो मालूम हुआ कि यह आरोप घोर अन्याय एवं पक्षपात पर आधारित है। और जो इल्ज़ाम आदरणीय मिर्ज़ा साहिब पर लगाये जाते हैं उन में लेशमात्र सत्यता नहीं। सब से बड़ा इल्ज़ाम यही लगाया जाता है कि वे *ख़तमे नबूवत* के कायल नहीं, हालांकि इस से ज़्यादा बेमानी और निरर्थक इल्ज़ाम कोई और नहीं हो सकता। वे यक़ीनन *ख़तमे नबूवत* के क़ायल थे, और संभवतः उसी श्रद्धा और तीव्रभाव के साथ जो हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल]के एक सच्चे प्रेमी में होना चाहिए। वे हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल]के विशुद्ध अनुकरण के कारण स्वयं को *रसूल की परछाईं*, नबी[सल्ल] के आदर्श का आविर्भाव ज़रूर करार देते थे, और यह कोई आपत्तिजनक बात नहीं। जो भी व्यक्ति हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल]के पावन जीवन को सामने रख उसका अनुसरण करे गा वह *नबी की परछाईं* कहलाये गा। अगर मिर्ज़ा साहिब ने इसे अमलन कर दिखाया तो वे निश्चय ही *ज़िले नबवी* (नबी की परछाईं) और रसूल के आदर्श का *बुरूज़* (पुनराविर्भाव) भी थे। कितने अफसोस की

Scanned with CamSca

बात है कि लोग न अहमदी जमात का लिट्रेचर पढ़ते हैं और न उनकी उपलब्धियों को देखते हैं, महज़ सुनी सुनाई बात पर विश्वास कर इस के प्रति दुर्भावना पाल लेते हैं।''

(मासिक निगार, मई 1962 ई॰ बहवाला
''मुलाहिज़ाते नियाज़ फ़तेहपुरी'', पृष्ठ 113–114)

''मिर्ज़ा साहिब का हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल]से लगाव अति श्रद्धायुक्त एवं निष्ठा से परिपूर्ण था। हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल] के व्यक्तित्व के प्रति उनका प्रेम और अनुराग (कथनी और करनी, दोनों में) इतना अगाध था कि इसकी दूसरी मिसाल इस दौर में मिलनी मुश्किल है। एक कविता में फ़रमाते हैं :

(हम नीचे इन फ़ारसी पंक्तियों का अनुवाद भी दे रहे हैं–ख़ुर्शीद)

بعد از خدا بعشق محمد مخمرم گر کُفرایں بُودبخداسخت کافرم
ہرتار و پودِ من بسرایدبعشق او ازخودتہي وازغم آں دلستاں پُرم
من نیستم رسول ونیاوردہ اَم کتاب ہاں ملہم استم وزخداوند منذرم
یارب بہ زاریم نظرکُن بہ لطف وفضل جزدستِ رحمتِ تودِگرکیست یاورم
جانم فدا شود بہ رہِ دینِ مصطفےٰ ایں است کام دل اگرآید میسرم

(1) अल्लाह के बाद में हज़रत पैग़म्बरश्री मुहम्मद[सल्ल]के प्रेम में मदहोश हूँ, यदि इसी बात का नाम *कुफ़्र* है तो अल्लाह की कसम मैं सख़्त काफ़िर हूँ।

(2) हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल]का प्रेम मेरे रोमरोम में बस चुका है, मैं अपने वजूद से रिक्त और इस प्रियतम के ग़म से भरा हुआ हूँ।

(3) मैं पैग़म्बर नहीं हूँ और न ही कोई किताब लाया हूँ। हाँ! अल्लाह का *इलहाम* पाने वाला और अल्लाह की ओर से सचेतकर्ता हूँ।

(4) ऐ मेरे रब! मेरे रोने–बिलखने को देख कर मुझ पर दयादृष्टि कर, तेरी दया के सिवाय और कौन मेरा सहायक है।

(5) मेरी जान हज़रत पैग़म्बरश्री मुहम्मद[सल्ल]के धर्म–मार्ग पर निछावर हो जाए, यही मेरे दिल की अभिलाषा है। काश! पूरी हो जाए।

आश्चर्य है कि जिस व्यक्ति का दिल अल्लाह के रसूल[सल्ल]के लिए ऐसी कुर्बानी की भावनाओं से भरा हो, और जो साफ़ साफ़ यह कहे कि

Scanned with CamSca

من نیستم رسول *मन नेसतम रसूल* (मैं *रसूल* बिल्कुल नहीं हूँ), उसी के बारे में यह कहा जाये कि वह *ख़तमे नबूवत* का कायल नहीं था, या यह कि वह खुद *रसूल* बनकर अपनी एक अलग समानांतर *शरीयत* (धर्मविधान) क़ायम करना चाहता था।

हज़रत मिर्ज़ा साहिब ने अपनी इस प्रेमयुक्त भावना एवं मान्यता का इज़हार अपने लेखों और भाषणों में बार बार और खुले शब्दों में किया है। 2 अक्तूबर 1893 ई॰ को दिल्ली की जामा मस्जिद में मुसलमानों एक बहुत बड़े समूह को संबोधित करते हुए आप ने फ़रमाया :

"मैं इस अल्लाह के घर में साफ साफ इकरार करता हूँ कि मैं हज़रत *ख़ातिमुल्.अंबिया*[सल्ल] (नबियों के सिलसिले को खतम करने वाला) की *ख़तमे नबूवत* का कायल हूँ, और जो व्यक्ति *ख़तमे नबूवत* का इनकार करे उसको बेदीन (धर्मरहित) और दायरा इस्लाम से बाहर समझता हूँ।"

"मैं आयत "परन्तु (मुहम्मद) अल्लाह का रसूल और *ख़ातमंनबियीन* (आख़री नबी) है" पर सच्चा और संपूर्ण विश्वास रखता हूँ।"

(एक गलती का इज़ाला, पृ॰ 3)

"खुदा एक है और मुहम्मद[सल्ल] उसके नबी और *ख़ातिमुल्.अंबिया*[सल्ल] हैं।" (किशती नूह, पृ॰15)

मैं नहीं समझता कि मिर्ज़ा साहिब के इन कथनों के होते हुए यह कहना कि वे *ख़तमे नबूवत* के क़ायल न थे, किस प्रकार सही और सत्य हो सकता है?.....आप अपने विचार के पक्ष में जो सब से मज़बूत दलील पेश कर सकते हैं वह *ला नब्बी.य बादी* (मेरे बाद कोई नबी नहीं आयेगा) की हदीस है, लेकिन अगर इसी के साथ *अुल्माअु उम्मती कंबियाअि बनी इस्राअील* (मेरी *उम्मत* (मुस्लिम समुदाय) के ज्ञानीजन इसराईली नबियों जैसे होंगे) वाली हदीस को भी सामने रखा जाए और दोनों को परस्पर विरोधी करार न दिया जाए, तो निश्चय ही दोनों हदीसों में *नबी* शब्द का अर्थ एक दूसरे से भिन्न होना चाहिए.....चलो थोड़ी देर के लिए मान लें कि इस से मुराद *नबूवत* की पूर्ण समाप्ति है। तो भी यह सवाल अपनी जगह पूर्ववत क़ायम रहता है कि जिस *नबूवत* की समाप्ति का ज़िक्र इस हदीस में किया गया है उसका स्वरूप क्या है?

Scanned with CamSca

इस विषय में जब हम इस्लाम के महान वेत्ताओं और शास्त्रज्ञों के कथनों पर दृष्टि डालते हैं (जिन में मुही उद्दीन इबन अरबी, अबदुल वहाब शअरानी, मुजदद अलिफ़ सानी, इमाम अली अल्.कादिरी और हमारे ज़ामना के मौलाना अबुल हैय फ़रंगी महली शामिल हैं) तो मालूम होता है कि इस से मुराद सिर्फ़ *'नबूवते तशरीअी'* (शरीयत वाली नबूवत) है.....अतः इस बयान से यह बात साफ़ हो जाती है कि *ख़ातमन्नबियीन* में *नबियीन* से मुराद सिर्फ शरीयत वाले नबी ही हैं। वे उलेमा (ज्ञानी) इस में शामिल नहीं जो कुर्आनी शरीयत पर चल कर *नबूवत* (यानि परोक्ष की ख़बरों या भविष्यवाणियों) का दावा करते हैं। अब आप ग़ौर फ़रमाइये कि हज़रत मिर्ज़ा साहिब ने अपनी *नबूवत* का दावा किस माना में किया? यदि उन्हों ने शरीयते कुर्आनी से हट कर खुद अपनी कोई शरीयत पेश की है तो उन का दावा यक़ीनन ग़लत है। और अगर ऐसा नहीं है तो फिर उस के मानने में संकोच क्यों है? जब कि उन्हों ने हमेशा अपने आपको हज़रत पैग़म्बरश्री मुहम्मद[सल्ल]के सेवक के रूप में ही पेश किया, और उसी आदर्श जीवन, उसी पावन चरित्र और उसी नैतिक शक्षिा का प्रचार किया जिसे हम मुसलमान *'उसवहे नबी'*, नबी[सल्ल]का आदर्श नमूना कहते हैं।

इस की तरदीद (खंडन) में आप ज़्यादा से ज़्यादा यही कह सकते हैं कि इस माना में क्यों उन्हीं को *नबी* मान लिया जाए किसी और को क्यों नहीं? तो इस के जवाब में मैं भी कम से कम यह कह सकता हूँ : ––अगर उस जैसा कोई और है तो उसे पेश कीजिये! जिस ज़माना में मिर्ज़ा साहिब इस्लाम और उस से जुड़े धर्मानुष्ठानों की सहायता के लिए उठे, वह बड़ा नाज़ुक वक़्त था, और हिन्दुस्तान के उलेमाओं का पूरा वर्ग बिल्कुल सोया हुआ था, इस्लाम के विरोधिों के सामने आने की योग्यता और साहस न रखता था। खुलम खुला सरे आम इस्लाम और इसके प्रवर्तक हज़रत पैग़म्बरश्री मुहम्मद[सल्ल]का अपमान किया जाता था। मुस्लिम घराने में पैदा होने वाले किसी मुसलमान को इस का अहसास तक न था। मुसलमानों के दिलों से धार्मिक ग़ैरत और इस्लामी लगाव बिल्कुल मिट चुका था। इस्लामी कर्मकांड (नमाज़ादि) की पाबन्दी केवल नाम मात्र के लिए रह गई थी। इस बुरे वकत का अहसास मौलना हाली को एक हद तक अवश्य हुआ। लेकिन हमारे उलेमा के हाथ भी दुआ के लिए नहीं उठे। कदम उठाने की बात ही क्या! मतलब यह कि, यह था वह नाज़ुक वकत जब क़ादियान से एक

Scanned with CamSca

आसमानी महा पुरुष उठ खड़ा हुआ, और उस ने अपने लेखों, अपने भाषणों और अनथक कोशिशों से न सिर्फ यह कि विरोधियों के बकवास का जवाब दिया बल्कि मुसलमानों में एक ऐसी सक्रिय जमात पैदा कर दी जिस का एतराफ़ आप को भी है।''

(मासिक निगार, सतम्बर 1961 ई॰ बहवाला
''मुलाहिज़ाते नियाज़ फ़तेहपुरी'', पृष्ठ 97–101)

''वे अपने आप को निश्चय ही नबी का *ज़िल* (प्रतिबिंब) या *प्रतिज्ञात महदी* समझते थे, लेकिन इनका यह कहना *ख़ातमन नब्बियीन* की मान्यता के विरुद्ध नहीं। क्योंकि जिस *नबूवत* को वे आख़िरी नबूवत समझते थे उसका उन्हों ने कभी दावा नहीं किया, और जिस *ज़िल्ली नबूवत* का वे स्वयं को पात्र बताते थे, वह कोई नई चीज़ नहीं (कि सिर्फ उन्हीं तक सीमित हो)। अल्लाह के रसूल[स॰अ॰]ने स्वयं उम्मत के उलेमा को इसराईली नबियों जैसा बताया है। और मिर्ज़ा साहिब का संबंध यक़ीनन उम्मते मुहम्मदिया (हज़रत पैग़म्बरश्री[स॰अ॰]का अनुयायी समुदाय) से ही था। मिर्ज़ा साहिब के दावों में महत्त्वपूर्ण दावा यही है कि वे *मुजद्दिद* (धर्मसुधारक) थे, *नबी का प्रतिबिंब* और *प्रतिज्ञात महदी* थे। लेकिन इन सब का आशय एक ही था। वह यही कि उनका आविर्भाव इस्लाम धर्म के पुनर्जीवन के लिए हुआ था। इस में संदेह नहीं कि उन्हों ने वकाई इस्लामी नैतिकता को पुनः जीवित कर दिया, और एक ऐसी जमात पैदा कर के दिखा दी जिस के जीवन को हम यकीनन हज़रत पैगम्बरश्री[स॰अ॰]के *आदर्श का प्रतिबिंब* कह सकते हैं।''

(मासिक निगार, नवम्बर 1959 ई॰ बहवाला
''मुलाहिज़ाते नियाज़ फ़तेहपुरी'', पृष्ठ 29)

सवाल : मिर्ज़ा साहिब ने ऐतिहासिक परिस्थितियों से लाभ उठाते हुए इस्लाम के बहुत से सिद्धांतों को विकृत कर डाला, मिसाल के तोर पर *जिहाद* का सिद्धांत, मिर्ज़ा साहिब ने इसको मनसूख़ (निरस्त) ठहराया?

जवाब : इस से ज़्यादा ग़लत बयानी और क्या हो सकती है, कि आप मिर्ज़ा साहिब पर बहुत से इस्लामी सिद्धांतों को बिगाड़ने का आरोप लगाते हैं। ऐसा लगता है कि आप स्वयं इस्लामी सिद्धांतों से वाकिफ नहीं। इस्लाम का विश्वास संबंधी पक्ष केवल इतना है कि अल्लाह, उसके रसूलों, आसमनी किताबों, फ़रिश्तों और मरणोरांत जीवन पर ईमान लाया जाए। और अमली क्षेत्र में नमाज़, रोज़ा, ज़कात, हज और अल्लाह के मार्ग में *जिहाद* है। अतः

Scanned with CamSca

मुझे बताइये कि मिर्ज़ा साहिब ने इन में से किन किन बातों को विकृत किया। वे विश्वास संबंधी इन सब बातों के उसी तरह क़ायल थे जिस तरह आम मुसलमान। रही बात अमली पहलू की, तो संभवतः आप को भी इस से इनकार न होगा कि मुसलमानों में कोई जमात इस्लामी नियमों की इतनी पाबन्द नहीं जितनी अहमदी जमात है। रहा मसला *जिहाद* का, तो इस मामले में भी उन का दृष्टिकोण ठीक कुर्आनी शिक्षओं के अनुरूप है। *जिहाद* हमेशा अपनी ज़ात से शुरू होता है.....और वह *जिहाद* जिस का अर्थ आम तोर पर जंग लिया जाता है, वह केवल प्रतिरक्षा के रूप में ही अनिवार्य है। कुर्आन ने आक्रमणात्मक जंग को कभी जाइज़ नहीं समझा। यदि आप हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल]के ज़माना और पहले चार ख़लीफ़ों के ज़माना का इतिहास पढ़ें गे तो आप को आक्रमणात्मक जंग की एक भी मिसाल न मिले गी। स्वयं हज़रत पैग़म्बरश्री[सल्ल] ने इस्लाम के प्रचार के लिए कभी तलवार न उठाई, और न धर्मपरायण ख़लीफ़ों ने देश की सीमा बढ़ाने के लिए किसी क़ौम पर हमला किया। आप ख़लीफ़ों के बाद वाले ज़माने को सामने न रखिये, वह ज़माना इस्लामी राज्य के प्रभुत्व का था, इस्लाम धर्म के प्रभुत्व का न था।

मिर्ज़ा साहिब ने यदि अंगरेज़ों के विरुद्ध तलवार वाले *जिहाद* से मना किया, तो यह मनाही इस्लामी धर्मविधान (शरीयत) के बिल्कुल अनुरूप थी। क्योंकि अंगरेज़ों के ज़माना में सारे मुसलमान अपने धार्मिक अनुष्ठानों को पूरा करने के लिए आज़ाद थे। अतः भारत को *दारुल् हरब* (युद्ध क्षेत्र) समझ वहां तलवार वाले *जिहाद* का कोई औचित्य न था। उस काल में यदि कोई *जिहाद* हो सकता था तो वह धर्म–प्रचार वाला *जिहाद* ही था। और इस सिलसिले में मिर्ज़ा साहिब ने जिस तरह ग़ैर–मुस्लिमों का मुकबला किया है, उस से आप भी इनकार नहीं कर सकते।''

(मासिक निगार, अप्रैल 1961 ई॰ बहवाला
''मुलाहिज़ाते नियाज़ फ़तेहपुरी'', पृष्ठ 78–79)

सवाल : मिर्ज़ा साहिब बड़े वक़्त शिनास (समय की धारा को पहचानने वाले) बुज़ुर्ग थे। हमारे उलेमा कहते हैं कि मिर्ज़ा साहिब में यह शक्ति थी कि अरबी भाषा न जानते हुए मौलवी नूरुदीन जैसे विद्वान को अपना परम भक्त बना लिया, अंगरेज़ी से अनजान होते हुए भी मुहम्मद अली जैसे

Scanned with CamSca

अंग्रेज़ी जानने वाले *मुफ़स्सिरे* कुर्आन उनकी गुलामी का दम भरने लगे। इसी तरह उन्हों ने मुसलमानों के बहुत से दिल व दिमाग़ अपने साथ मिला लिए।'' (ये सारे शब्द आपत्तिकर्ता के हैं)।

जवाब : आप ने हज़रत मिर्ज़ा साहिब को बड़ा वकत शिनास कहा है, इसमें वाकई कोई शक नहीं कि वे बड़े वकत शिनास थे। क्योंकि उनका अहमदिय्या आंदोलन इसी वकत शिनासी का परिणाम था। लेकिन आप ने इस संदर्भ में एक वाक्य ऐसा लिखा है जिस से पता चलता है कि वकत शिनासी का इस्तेमाल आपने किसी और अर्थ में किया है। क्योंकि इस सिलसिले में आप ने मौलवी नूरुद्दीन साहिब और मौलवी मुहम्मद अली साहिब का ज़िक्र करते हुए यह भी ज़ाहिर किया है कि मिर्ज़ा साहिब अरबी और अंग्रेजी न जानने के बावजूद इन दोनों विद्वानों पर छा गए। लेकिन आप की इस बात का वकत शिनासी से कोई संबंध नहीं। बल्कि यह बात हज़रत मिर्ज़ा साहिब की उच्च नैतिकता और अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति की परिचायक है। इसी चीज़ ने इन दोनों महा पुरुषों को अपना गुलाम बनाया, किताबी ज्ञान का यहाँ कोई काम नहीं।

हज़रत मिर्ज़ा साहिब अंग्रेज़ी जानते थे या नहीं इसका इलम नहीं, लेकिन आपका उनकी अरबी भाषा में दक्षता का इनकार आश्चर्य की बात है। शायद आप को मालूम नहीं कि मिर्ज़ा साहिब के अरबी साहित्य, गद्य और काव्य, की वाग्मिता और अपूर्व गरिमा का एतराफ़ स्वयं अरब विद्वानों ने किया है। हालांकि मिर्ज़ा साहिब ने किसी शिक्षा केन्द्र में अरबी भाषा की शिक्षा न पाई थी। और मैं समझता हूँ कि हज़रत मिर्ज़ा साहिब का यह कारनामा प्रबल सबूत है इस बात का कि प्रभु ने उन्हें अनेक दिव्य वरदानों से मालामाल किया था।''

(मासिक निगार, सतम्बर 1961 ई॰ बहवाला
''मुलाहिज़ाते नियाज फ़तेहपुरी'' पृष्ठ 101)

Scanned with CamSca

आख़िरी निवेदन

"मैं क्या, जो भी सच्चे और निष्पक्ष मन से हज़रत मिर्ज़ा साहिब के जीवन और व्यक्तित्व का अध्ययन करे गा, उसे यह स्वीकारना पड़े गा कि वे सही मायनों में रसूल[सल्ल]के अगाध प्रेमी थे, और इस्लाम के प्रति सच्ची संवेदना और दर्द अपने दिल में रखते थे। उन्हों ने जो कुछ कहा या किया वह सहज परिणाम था उन के उन बे इख़तियार पावन मनोभावों का जो वे सत्य और सत्य के प्रचार के प्रति रखते थे।"

(मौलाना नियाज़ फ़तेहपुरी)

اَللّٰهُ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ ۚ اَلْحَیُّ الْقَیُّوْمُ ۚ
لَا تَاْخُذُهٗ سِنَةٌ وَّلَا نَوْمٌ ؕ لَهٗ مَا فِی السَّمٰوٰتِ
وَمَا فِی الْاَرْضِ ؕ مَنْ ذَا الَّذِیْ یَشْفَعُ عِنْدَهٗۤ
اِلَّا بِاِذْنِهٖ ؕ یَعْلَمُ مَا بَیْنَ اَیْدِیْهِمْ وَمَا خَلْفَهُمْ ۚ
وَلَا یُحِیْطُوْنَ بِشَیْءٍ مِّنْ عِلْمِهٖۤ اِلَّا بِمَا شَآءَ ۚ
وَسِعَ كُرْسِیُّهُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضَ ۚ
وَلَا یَـُٔوْدُهٗ حِفْظُهُمَا ۚ
وَهُوَ الْعَلِیُّ الْعَظِیْمُ ۝

"अल्लाह——उसके सिवा कोई ईश्वर नहीं, सदैव जीवन्त, स्वयं स्थिर, स्थिरता प्रदान करने वाला। उसे न तो ऊँघ वशीभूत करती है और न नींद। उसी का है जो कुछ आकाशों में है और जो कुछ धरती मे है। कौन है जो उसके पास सिवाय उसकी अनुमति के सिफ़ारिश करे? वह जानता है जो कुछ उनके सामने है और जो कुछ उनके पीछे है। और वे उसके ज्ञान में से किसी चीज़ पर पार नहीं पा सकते सिवाय उसके जो वह चाहे। उसका ज्ञान आकाशों और धरती पर छाया हुआ है, और उन दोनों का संरक्षण उसे थकाता नहीं। और वह सर्वोच्च, महान है।" *(आयत अल्.कुरसी)*

Scanned with CamSca